तारन-त्रिवेणी

मूल-लेखक

परम पूज्य आचार्य

श्रीमद्तारणतरण स्वामी जी महाराज

प्रस्तावना-लेखक

डॉ० हीरालाल जी जैन एम. ए., एल एल बी

प्रोफेसर,

किंग एडवर्ड कालेज, अमरावती

पद्यानुवादक

रत्नकरंडश्रावकाचार व भक्तामर के पद्यानुवादक,

श्री अमृतलाल "चंचल"

मुद्रक
पं० परमेष्ठीदास जैन
संचालक,
जैनेन्द्र प्रेस, ललितपुर।

प्रकाशक
श्री तारणतरण ग्रंथ माला
तीर्थ क्षेत्र श्री निसई जी,
पो० मुंगावली (म० भा०)

उपहार

श्री ____________

निवेदन

तारणसमाजभूषण धर्मदिवाकर पूज्य श्री ब्रह्मचारी
लानचन्द्र जी महाराज ने मंत्री पद के समय अपने
ता धर्मरत्न स्वर्गीय लालदास जी की व अपनी स्व-
िया विदुषी मातेश्वरी जी की पुण्य स्मृति मे इस ग्रंथ
ी १००० प्रतिया सन् ४० मे धर्मप्रेमी जनों को भेंट-
रूप वितरण की थीं। जिनका उपयोग अच्छा हुआ
ानयर ग्रन्थमाला ने पुन यह द्वितीय संस्करण जिसमें
। २६०० प्रतिया मुद्रित कराई गई है। जिनमे से ६००
तिया श्रीमान् मन्नूलाल कन्छेदीलाल जी डेरिया वाबई
२०० प्रतिया श्रीमान सेठ बसन्तलाल मुरलीधर बी
दा वालों की ओर से तारण समाज के प्रत्येक श्री चैत्या
यों में व स्वाध्याय प्रेमी जनों को भेंट स्वरूप भेजने का
व्यवस्था की जायगी। शेष १८०० प्रतिया ग्रन्थमाला के
ॉक मे रहेंगी।

एवं और भी जो सज्जन निःशुल्क प्रतियां अपनी ओर से वितरण कराना चाहें वे ४०) प्रति सैकड़ा मंगाकर या संस्था के ही द्वारा वितरण करने की व्यवस्था करें। अथवा जो स्वाध्याय प्रेमी सज्जन स्वयं स्वाध्याय के साथ ही साथ अपने इष्ट मित्रों को भी स्वाध्याय कराना चाहें वे ४) का मनिआर्डर भेजकर प्रतियां पोस्ट पार्सल द्वारा मंगालें। जिसका पोस्टेज भी फ्री रहेगा।

जिन सज्जनों ने वितरण कराई हैं व करावेंगे, सभी साहित्य प्रेमी सज्जन धन्यवाद के पात्र हैं।

श्रुतपंचमी, १६ जून १९५३
तारण सं० ५०५

मंत्री—ता० स० प्रचार
का नि सेवा का दल



प्रविश तारतम्य-त्रिवेणी पर दो शब्द

ति हो यदि साहित्यज्ञ प्रलय का समय आजावे और
रते हैं क से कहा जाय कि तुम भारतीय साहित्य में से
वल उस साहित्य को बचा सकते हो जो तुम उसमें
वोत्कृष्ट और सदा नूतन रहने वाला समझते हो तो
बिना किसी संकोच के उस साहित्य की रक्षा करने
प्रयत्न करूंगा जो अध्यात्म से सबंधी रखता है
उसमें शाश्वत तत्वों की खोज की गई है, जहां मनुष्य
ी दृष्टि बहिर्जगत् के अन्तस्तल और अन्तर्जगत् के
वकास पर डाली गई है तथा जहां सुख और शान्ति
। साधन पराधीन न रखकर स्वाधीन दिखलाया गया
है। । प्राचीनतम साहित्य में वैदिककाल के उपनिषद्
थ इसी कोटि के हैं और विदेह राजर्षि जनक इन्हीं
सयोगी महात्माओं में से एक बतलाये हैं। मध्य-
लीन अनेक सन्त महात्मा ऐसे हुए हैं जिन्होंने
अपनी वाणी में आधिभौतिक जगत् का आन्तरिक
र्शन कराने तथा सच्चा सुख बतलाने का प्रयत्न किया
। उत्तर भारत के कबीर, नानक, दादू, पलटू आदि
था महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर, तुकाराम मोरोपंत आदि
ों ने अपने अपने समय में, अपने अपने प्रदेश की
नता का ध्यान थोथे क्रियाकांड और अंधविश्वास से
टाकर सच्चा शुद्ध भावना और हृदय की पवित्रता
ी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया है। बौद्धों के

भीतर भी महात्मा बुद्ध के समान आनंदघन, राम, योगी, गुणवती आदि अनेक ऐसे संत हुए हैं जिनका सम्प्रदाय चिरव्यापक कहा जा सकता है।

जैन धर्म में अध्यात्म की महिमा विशेष है। आत्मा के संबंध में जितना चिन्तन और अनुसंधान यहां किया गया है उतना किसी भी अन्य धर्म के भीतर किया गया नहीं पाया जाता। जैन धर्म मूलतः भावप्रधान है। सुख-दुख, पुण्य-पाप, अच्छाई-बुराई का संबंध यहां बाह्य करणों से नहीं किन्तु अन्तर्वृत्ति के आधीन बतलाया गया है। इस धर्म में आध्यात्मिक योगियों की संख्या बहुत अधिक है, जिनमें श्री कुन्दकुन्दाचार्य का नाम सबसे प्रथम याद आता है। उनके अनेक ग्रंथों में आत्मा से परमात्मा बनने का मार्ग दर्शाया गया है। उनकी परम्परा योगीन्द्र व रामसिंह जैसे मुनियों ने अत्यन्त निर्भीकता से कायम रखी है, जिनके परमात्मप्रकाश व पाहुडदोहा नामक ग्रंथ जैन साहित्य की अनुपम निधि हैं। उनका उपदेश है कि सुख के लिये बाहर पदार्थों पर अवलम्बित होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उससे केवल दुख और सन्ताप ही बढ़ेगा। सच्चा सुख इंद्रियों पर विजय और आत्मध्यान से ही मिलता है। यह सुख इंद्रियसुखाभासों के समान क्षणभंगुर नहीं है, किन्तु चिरस्थायी और कल्याणकारी है। आत्मा की शुद्धि

के लिये न तीर्थजल की आवश्यकता है, न नाना प्रकार वेष धारण करने की। आवश्यकता है केवल राग और द्वेष की प्रवृत्तियों को रोककर आत्मानुभव की। मूड मुडाने से, केशलौंच करने से या नग्न होने से ही कोई महा योगी और मुनि नहीं कहा जा सकता। योगी तो तभी होगा जब समस्त अंतरंग परिग्रह छूट जावें और मन आत्मध्यान में तल्लीन हो जावे। देवदर्शन के लिये पाषाण के बड़े बड़े मन्दिर बनवाने तथा तीर्थों तीर्थ भटकने की अपेक्षा अपने ही शरीर के भीतर निवास करने वाले देव का दर्शन करना अधिक सुखप्रद और कल्याणकारी है। आत्म ज्ञान से हीन क्रियाकाड कण रहित तुष और पयाल कूटने के समान निष्फल है। ऐसे व्यक्ति को न इन्द्रिय सुख ही मिलता है और न मोक्ष का मार्ग ही।

इसी प्रकार के एक बड़े महात्मा सोलहवीं शताब्दि में बुन्देलखंड में हुए हैं जिनका नाम है तरनतारन स्वामी। आत्ममनन और तद्विषयक ग्रंथ रचना के अतिरिक्त इनका प्रभाव इससे भी जाना जाता है कि उनकी विचार धारा को मानने वाला एक सम्प्रदाय जैन समाज के भीतर आज तक भी कायम है जो 'तारनपंथी' समाज के नाम से प्रसिद्ध है। यह समाज मूर्ति पूजा को नहीं मानता, वह 'समय' अर्थात् सिद्धान्त व शास्त्रों की पूजा करता है।

किन्तु दुर्भाग्यवश बहुत समय तक तारनतारन स्वामी के रचे हुए ग्रंथों की प्रसिद्धि नहीं हुई, न उनका संशोधन व प्रकाशन हुआ। प्रत्युत उस समाज में उनके ग्रंथों को गुप्त रखने की प्रवृत्ति भी हो गई थी। पर कोई भी समाज, चाहे वह कितना ही कट्टर क्यों न हो, समय की मांग और उसके प्रभाव से बच नहीं सकता। समय एक ऐसा व्यक्ति खड़ा कर देता है जो उस कट्टरता के दुर्ग को तोड़कर ज्ञान-स्वातन्त्र्य की धारा बहा देता है। गत आठ दश वर्षों से जैन-धर्म भूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी का ध्यान तारनतारन साहित्य की ओर गया है, जिसके फलस्वरूप उक्त समाज के धनिकशील सज्जनों के सहयोग द्वारा वे उस साहित्य की अनेक निधियों को प्रकाश में लाने में सफल हुए हैं। ब्रह्मचारी जी ने अब तक कोई पांच सात ग्रंथ इस साहित्य के मूल, भावानुवाद व विशेषार्थ सहित सम्पादित करके प्रकाशित कराये हैं। इन ग्रंथों की भाषाशैली बहुत कुछ अटपटी है। जैन धर्म के मूलसिद्धान्त और आध्यात्मवाद के प्रधान तत्त्व तो इसमें स्पष्ट झलकते हैं, पर कर्त्ता की रचनाशैली किसी एक सांचे में ढली और एक धारा में सीमित नहीं है। यह स्पष्ट है कि कवि किसी सीमा को बांधकर अपने विचार व्यक्त नहीं कर रहे हैं, किन्तु विचारों का उद्रेक जिस ओर, जिस प्रकार बह चला गया, तब वैसा उन्हें ग्रथित करके रख दिया। और इस कार्य में

इन्होंने जिस भाषा का अवलम्बन लिया है वह
बिलकुल उनकी निजी चीज है। वह भाषा के स
देश-प्रदेश-भेदों व काल-भेदों के परे है। न वह सं
है, न कोई प्राकृत-अपभ्रंश है और न कोई प्रच
देशी भाषा। मेरी समझ में उसे 'तरनतारन भ
ही कहना ठीक होगा, जिसका परिचय उन ग्रंथ
अवलोकन से ही पाया जा सकता है।

इस साहित्य के तीन छोटे छोटे ग्रंथ हैं—
पंडित पूजा, मालारोहण और कमल बत्तीस
इनमें शुद्ध भावना, शुद्धाचरण और विशुद्ध ज्ञान
जोर दिया गया है। पर जो गहन और मनोहर
उनमें भरे हैं उनका उस अटपटी शैली के कारण
साधारण द्वारा पूरा लाभ उठाया जाना कठिन
उनके ऐसे रूपांतर की जरूरत थी जो सरल, सु
और हृदयग्राही हो। ऐसा रूपान्तर मुझे प्रिय अमृत
"चंचल" के पद्यानुवाद में देखने को मिला। चंचल
कविता मूल के भाव की रक्षा करती हुई अ
सुन्दर और लोकरुचि के अनुकूल है। मुझे
और विश्वास है कि इस कविता द्वारा तरनत
स्वामी के उपदेशों का अच्छा प्रचार होगा।
'तारन-त्रिवेणी' जनता का खूब कल्याण करेगी

किंग एडवर्ड कालेज,
अमरावती

—हीरालाल जैन

अपनी बात

'तारन-विवेया' सोलहवीं शताब्दी में हुए, एक पहुँचे हुए जैन संत की तीन महान कृतियों का (पंडितपूजा, मालारोहण, कमल बत्तीसी) एक परिवर्तित सामूहिक नाम है। इन ग्रंथों में जहां कहीं भी कवि की दृष्टि दौड़ी है, वहीं उन्हें आध्यात्मिकता का दीदार हुआ है। आत्मा ही देव है, आत्मा ही शास्त्र है, आत्मा ही गुरु है, आत्मा ही तीर्थ है और आत्मा ही धर्म है। कविवर मीरा के समान इन ग्रंथों में, यदि कोई भावुक देखे तो वे एक तरह से गाते में दिखाई पड़ते हैं—

"मेरो तो आतम दयाल दूसरो न कोई रे।
जाके सिर ज्ञान-मुकुट मेरो नाथ सोई रे। "

साम्प्रदायिकता या दीगर भेद भाव से आपकी कृतियाँ एक तरह से सर्वथा अछूती हैं और अगर गुरुदेव के अनुयायीगण आज तक उनके महान ग्रंथों का आलमारियों में बंद न रख, विद्वानों को इस बात का अवसर देते कि व देखते कि उन ग्रंथों में परम पूज्य स्वामी जी संसार के नाम क्या वसीयत कर गये हैं और उन्होंने किस ऐसे सर्वप्रिय और चुम्बक से आकर्षक मार्ग को अख्तियार किया था कि जिससे न कुछ समय में ही जाति पाँति के भेद भाव को छोड़कर उनके लगभग ५,५३००० शिष्य होगये थे, तो आज संसार का कल्याण हो जाता और स्वामी जी का नाम संसार के बच्चों बच्चों की जुबान पर होता।

—अमृतलाल "चंचल"

समर्पण

तारणस्वामी व जिनवाणी के अनन्य भक्त

धर्मरत्न,

स्वर्गीय श्रीमान् पं० लालाराम जी

के दूर पहुँचे हुए

कर कमलों में



तारणतरण आचार्यजी के
आप भक्त महान् थे ।
प्रति पल अधर से आपके
उनके निकलते गान थे ।
उनके प्रसूनों पर न फिर
क्यों आपका अधिकार हो ?
'तारन त्रिवेणी' आपकी है,
आपको स्वीकार हो ।

—चंचल—

प्रथम धारा



आतम ही है देव निरंजन,
आतम ही सद्गुरु भाई!
आतम शास्त्र, धर्म आतम ही,
तीर्थ आतम ही सुखदाई।
आत्म मनन ही है रत्नत्रय-
पूरित अवगाहन सुखधाम।
ऐसे देव, शास्त्र, सद्गुरुवर,
धर्म, तीर्थ को सतत प्रणाम।



पंडित पूजा

आगम्य ऊर्ध्वस्य,
ऊर्ध्व गच्छात शाश्वत ।
सिद्ध स्थानेन तिष्ठते,
ज्ञानेन शाश्वत ध्रुव ।

[पद]

ओम् रहा है और रहेगा
सतत इस महानागार ।
परमब्रह्म, आनन्द ओम् है,
ओम् अमूर्त, शून्य—आकार ।
ओम् पंच परमेष्ठी मण्डित
ओम् ऊर्ध्व गति का धारी ।
केवल ज्ञान निधु ज ओम् है,
ओम् अमर, ध्रुव, अविकारी ।

निश्चय नय जानते,
शुद्ध तत्व निवीपते।
ममात्मा गुण शुद्ध,
नमस्कार शाश्वत ध्रुव।

[दो]

जिन्हें वस्तु के मत, चित् ज्ञायक,
या निश्चय नय का है ज्ञान।
वही अनुभवी, पारखि करते,
निज स्वरूप की सत् पहिचान।
अन्तस्तल-आसीन आत्मा,
वह है अपना देव ललाम।
आत्म द्रव्य का अनुभव करना,
ही है सच्चा, अचल प्रणाम।

ॐ नम चिन्मे योगी,
सिद्ध भवन् शाश्वत।
पंडितो सोपि जानते,
देवपूजा विधीयते।

[तीन]

योगीजन नित ओम नम का,
शुद्ध ध्यान ही धरते हैं।
'सोऽहं' पद पर चढ़कर ही वे
प्राप्त सिद्ध-पद करते हैं।
'ओम् नम' जपते जपते जो
निज स्वरूप में रमजाता।
वही देव पूजा करता है,
पण्डित वह ही कहलाता।

ह्रींकार ज्ञान उत्पन्न,
ओंकार च वदते ।
अरहं सर्वज्ञ उक्तं च,
अचक्षु दर्शन दृष्टते ।

[चार]

जगत पूज्य अरहन्त जिनेश्वर,
जिसका देते नव उपदेश ।
सम्यग् दृष्टि सरस सुनाते,
जिसका घर घर में संदेश ।
जो अचक्षु दर्शन चक्षु गोचर,
जो चित् चमत्कार सम्पन्न ।
ओंकार की शुद्ध वंदना,
करती यही ज्ञान उत्पन्न ।

मति श्रुतश्च सपूर्णं,
ज्ञान पंचमयं ध्रुव।
पठितो सोपि ज्ञानंते,
ज्ञान शास्त्र म पूजने।

[पाठ]

मति,श्रुत, अवधि,मन पर्यय ये,
ज्ञान करें निसम कल्लोल।
पंच ज्ञान केवल भी निसम,
छोड़ रहा निजज्योति अलोल।
ऐसे आत्म-शास्त्र को ही नित,
जो पूजे विवेक शिरमौर।
वही सत्य पंडित प्रज्ञाधर,
यही ज्ञान धन का है ठौर।

ॐ ह्रां श्रियंकरं,
दर्शन च ज्ञानं ध्रुवं ।
देव गुरु श्रुत चरणं,
धर्म सद्धारणाश्वतं ।

[छह]

ह्रीं श्रीं ये रूप मनोहर,
करते जिसमें विमल प्रकाश ।
अमर ज्ञान, दर्शन का है जो,
पद शाश्वतम दिव्य निवास ।
वही परम उत्कृष्ट ओम ही,
है त्रिभुवन मंडल में सार ।
वही देव,गुरु,शास्त्र आचरण,
वही धर्म सद्व्यापार ।

वीर्य धैर्यरख शुद्ध,
त्रैलोक लोकित सुच।
रत्नत्रय मयं शुद्ध,
पंडितो गुण पूजने।

[सात]

केवलज्ञान मुकुर में जिसको,
तीनों लोक दिखाते हैं।
जिसके स्वाभाविक बल बल का,
निधि ल थाह न पाते हैं।
रत्नत्रय की सुरसरिता से,
शुद्ध हुआ जो द्रव्य महान्।
उसी आत्म रूपी सद्गुरु की,
करते हैं पूजन विद्वान।

देव गुरु श्रुत वन्द,
धर्मशुद्ध च त्रिभूते।
तिप्रर्थ अर्थलोन च,
स्नान च शुद्ध जलं।

[आठ]

आतम ही है देव निरंजन
आतम ही सद्गुरु भाइ।
आतम शास्त्र, धर्म आतम ही,
तीर्थ आतम ही सुखदाइ।
आत्म मगन ही है रत्नत्रय-
पूरित अवगाहन सुखधाम।
ऐसे देव, शास्त्र, सद्गुरुवर,
धर्म, तीर्थ को सतत प्रणाम।

चेतना लक्षणो धर्मा,
चेतियंत सदा बुधै ।
ध्यानस्य जलं शुद्ध ,
ज्ञान स्नान पंडित ।

[नौ]

चिदानन्द, मय, शुद्ध आत्मा,
जो चेतनता है पहिचान ।
बुद्धिमान जन नित्य निरंतर,
धरते हैं उस ही का ध्यान ।
नदी, सरोवर में करते हैं,
अवगाहन जड़ अज्ञानी ।
आत्म ज्ञान जल से प्रक्षालन,
करते सत्पंडित ज्ञानी ।

शुद्धतत्व च वर्दते,
त्रिभुवनम् ज्ञानेश्वरं ।
ज्ञान मयं जल शुद्ध,
स्नान ज्ञानं पंडित ।

[अर्थ]

हस्तामलकवत् जिसको तीनों,
भुवन, चराचर प्राणी हैं ।
उसी ब्रह्म को ध्याते हैं मन,
जो गुणवान, विज्ञानी हैं ।
शुद्ध आत्म है स्वच्छ सरोवर,
कल कल करता निर्मल ज्ञान ।
इसी ज्ञान रूपी जल में नित,
पंडित जन करते (हैं) स्नान ।

सम्यक्त्वस्य जलं शुद्धं,
सम्पूर्णं सर पूरितं।
स्नानं पिबत गणधरन,
ज्ञान सरनंत ध्रुवं।

[ग्यारह]

सम्यग्दर्शन रूपी जिसमे,
भरा हुआ है नीर अगम्य।
ऐसा है यह परम ब्रह्म का,
भव्यो! सरवर अविचल रम्य।
महा मुनीश्वर श्री गणधर जी,
जिनकी शरण अनेकों ज्ञान।
इस सर में ही अवगाहन कर,
करते इसका ही जल पान।

शुद्धसत्व च वंदेमे,
त्रिभुवनम् ज्ञानेश्वरं।
ज्ञान मयं जल शुद्ध,
स्नान ज्ञानं पंडितं।

[८४]

हस्तमलकवत् जिसको तीनों,
भुवन, चराचर प्राणी हैं।
उसी मन्त्र को ध्याते हैं हम,
जो बुधजन, विज्ञानी हैं।
शुद्ध आत्म है स्वच्छ सरोवर,
जल बहा करता जिसमें ज्ञान।
इसी ज्ञान रूपी जल में नित
पंडित जन करते (हैं) स्नान।

सम्यक्त्वस्य जलं शुद्धं,
संपूर्णं सर पूरितं।
स्नानं पिबत गणधरन,
ज्ञान सरनंतं ध्रुवं।

[ग्यारह]

सम्यग्दर्शन रूपी जिसमें,
भरा हुआ है नीर अगम्य।
ऐसा है यह परम ब्रह्म का,
भव्यो! सरवर अविचल रम्य।
महा मुनीश्वर श्री गणधर जी,
जिनको शाश्वत अनेकों ज्ञान।
इस सर में ही अवगाहन कर,
करते इसका ही जल पान।

कषाय चतु अनतानं,
पुण्य पाप प्रक्षालित ।
प्रक्षालित कर्म दुष्ट च
ज्ञाने स्नान पवित ।

[चौदह]

पुण्य, पाप दोनों रिपुओं को,
क्षय कर देता है यह नीर।
मलिन कषाय छिप जाती हैं,
देख रश्मि से इसके तीर।
यम-नृपति की सेना को भी
कर देता यह चल झट चूर्ण
ऐसा है यह ज्ञान-उदक क
अवगाहन मंगल परिपूर्ण

प्रक्षालितं मनश्चपलं,
त्रिविधि धर्म प्रक्षालिते।
परिहितो वस्त्र संयुक्त,
आभरण भूषण क्रियते।

वस्त्र च धर्म सद्भावं,
आभरणं रत्नत्रय।
मुद्रा मम मुद्रस्य,
मुकुट ज्ञानमयं ध्रुवं।

[सोलह]

शुद्ध आत्म-सद्भाव-धर्म ह
है पंडित का नवल चीर
झिलमिल करता रत्नत्रय
है उसका भूषण गंभीर
ममताभावमयी मुद्रा
है उसकी मुद्रिका अनूप
अविनाशी, ध्रुव, सत्यज्ञान
उसका शुभ किरीट चिद्र प

स्वर्ते शुद्ध दृष्टी स्
मिथ्यादृष्टिच स्यात् ।
असत्य अनृत न हन्ते
अचेत दृष्टि न हन्ते ।

[भा

दर्शनं शुद्ध समर्थं च,
सम्यक्त्वं शुद्ध ध्रुव ।
ज्ञानं मय च संपूर्ण,
ममलदृष्टि सदा बुधैं ।

[अठारह]

ज्ञान-नीर के अवगाहन से
असत् भाव मिट जाता है
परम शुद्ध सम्यक्त्व मात्र ही
फिर हिय में दिख पाता है
शुद्ध बुद्ध ही दिखते हैं फिर
आखों में प्रत्येक घड़ी
दिखता है बस यही ज्ञान की
अंतर में मच रही झड़ी

लोकमूढ़ें न दृष्टते,
देव, पाखंड न दृष्टते।
अनायतन मद अष्ट च,
शंकादि अष्ट न दृष्टते।

[उन्नीस]

[illegible] है या
[illegible]

[illegible]

दृष्ट शुद्ध पद साधं,
दर्शन मल निमुक्तय ।
ज्ञान मय शुद्ध सम्यक्त्व,
पडितो दृष्टि मग्न बुधं।

[भीम]

।

दृष्ट शुद्ध पद

दर्शन मल [illegible]

ज्ञान मय शुद्ध [illegible]

पंडितो दरि सदा

वेदेषु अप्रतिरथं च,
वेदेव नियत ध्रुवं ।
वैदोक्तं समयं शुद्धं,
यद् वेत्ति पंडितः ।

[हिंदी]

जो [illegible] सकता है
[illegible] जो [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

उच्चारण ऊर्ध शुद्ध च,
शुद्ध तत्वं च मानना ।
पटितो पूज आराध्यं,
जिन समय च पूजतं ।

[बाईस]

ऊर्ध्व-प्रणायक प्रणव मंत्र का,
करना मुख से उच्चारण ।
अपने निर्मल हृदय-मन्दिर में,
करना शुद्ध भाव धारण ।
यही एक पवित्र-पूजा है,
पूजनीय, शिव, सुखदाई ।
शुद्ध आत्मा का पूजन ही,
है जिन पूजा हे भाई ।

पूजनं च जिनैं उक्तं,
पण्डितो पूजतो सदा ।
पूजनं शुद्ध मार्गं च,
मुक्ति गमनं च कारणं ।

[तेईस]

आत्मद्रव्य की पूजा करना,
मन को निज रुच अनुगामी ।
यही ज्ञान मन में करता है,
पंडितपूजा शिवगामी ।
शुद्ध आत्मा ही भव-जल से,
तरने का बस है साधन ।
मुक्ति चाहते हो यदि तुम तो,
करो इसी का आराधन ।

अदेव अज्ञान मूढ़ च,
अगुरु अपूज्य पूजन।
मिथ्यात्व सकलजानते,
पूजा संसार भाजन।

[चौबीस]

देव' किन्तु देवत्वहीन जो
वे 'अदेव' कहलाते हैं।
वही 'अगुरु' जड़ जो गुरु बनकर,
झूठा जाल बिछाते हैं।
ऐसे इन 'अदेव' 'अगुरों' की
पूजा है मिथ्यात्व महान।
जो इनकी पूजा करते वे,
भव भव में फिरते अज्ञान।

तेनाहं पूज्य शुद्धं च,
शुद्ध तत्व प्रकाशकं ।
पण्डितो वंदना पूजा,
मुक्तिगमन न संशय ।

[पचीस]

[illegible] के पुञ्जों का नि
करता है जो प्रतिपादन ।
वही ब्रह्म है पूज्य, निरन्तर
करो उसी का आराधन ।
कुगुरु, कुदेवादिक की पूजा,
आवागमन कराती है ।
आत्म अर्चना, आत्म-वंदना,
मुक्ति-धाम पहुँचाती है ।

प्रति द्रव्य प्रति पूर्णम्य,
शुद्धात्मा शुद्ध भावना।
शुद्धार्थ शुद्ध समय च,
प्रति द्रव्य शुद्ध दर्शितं।

[छत्तीस]

द्रव्य कौन? निज चेतन ही तो
सत्य द्रव्य भयो स्वयमेव।
यही द्रव्य है शुद्ध भावना,
यही परम देवों का देव।
यही महा, शुचि शुद्ध अर्थ है
यही समय निर्मल, पावन।
इसी शुद्ध चिद्रूप देव का,
करो नितप्रति मनभावन।

दाताऽरु दान शुद्ध च,
पूजा आचरण सयुत ।
शुद्धसम्यक्त्वहृदय यस्य,
स्थिर शुद्ध भावना ।

[सत्ताईस]

जिस जन के [illegible]
सम्यग्दर्शन [illegible]
अपने हाथ [illegible]
निसे [illegible]
आतम [illegible]
पर [illegible]
परम [illegible]

शुद्ध दृष्टी च दृश्यते,
साधं ज्ञानमय ध्रुव।
शुद्धतत्व च आराध्य,
वन्दना पूजा विधीयते।

[अष्टादश]

चिदानंद के ज्ञान-गुणों के
अनुभव में होना तल्लीन।
यही एक वन्दना है सच्ची,
नहीं वन्दना और प्रवीण।
शुद्ध आत्म का निर्मल मन से
करना सच्चा आराधन।
यही एक बस पूजा सच्ची,
यही सत्य उस अभिवादन।

संघस्य चानु संघस्य,
मानना शुद्धात्मनां ।
समयसारस्य शुद्धस्य,
जिनोक्त साधं ध्रुवं ।

[उनतीस]

मुनी आर्यिका श्रावक-दम्पति
भी क्यों करें इतर चर्चा ?
निजानन्द-रत होकर वे भी
करें आत्म की ही चर्चा ।
शुद्ध आतमा ही इस जग में,
सारभूत है हे भाई !
जिनप्रभु कहते, आत्मध्यान ही,
एक मात्र है सुखदाई ।

साधं च सप्ततत्त्वानि
दर्शिताः पदार्थैः ।
चेतनाशुद्ध ध्रुव निश्चय,
उक्तं च केवलं जिन ।

[तीस]

सप्त तत्त्व को देखो भाई,
छह द्रव्यों का ज्ञानो कुंज ।
नौ पदार्थ, पंचास्तिकाय का
चाह सतत विशेष पुंज ।
इन सब में पर जीव-तत्त्व ही
सार पाओगे विज्ञानी ।
आत्मतत्त्व ही सारभूत है
कहती यह ही जिनवाणी ।

मिथ्या वित्त त्रतिय च,
कुज्ञान त्रति वित्तयं ।
शुद्धभाव शुद्ध समयं च,
माधे भव्य लोकय॰ ।

[इकतीस]

दर्शन मोह तीन हैं भइयो,
छोड़ो उनसे अपना नेह ।
कुमति कुश्रुत,कुअवधि,कुज्ञानों,
से भी हीन करो हिय-गेह ।
निर्मल भावोंसे तुम निशिदिन,
धरो आत्म का निश्चल ध्यान ।
आतम-ध्यान ही भव सागर से,
तरने को है पोत महान ।

एतद् सम्यक्त्वपूज्यस्य,
पूजा पूज्य समाचरत् ।
मुक्तिश्रियं पदं शुद्ध,
व्यवहारनिश्चयशाश्वत ।

[पचीस]

निर्मल कर मन, वचन काय को
दीप-अष्टनिधि बैतरणी ।
करो आत्म की पूजा विज्ञो,
यही एक भव-जल-तरणी ।
शुद्ध आतमा का पूजन ही,
पूजनीय है सुखदाई ।
युगल नयों से सिद्ध यही है
यही एक शिव-पथ भाई ।

द्वितीय धारा





प्याला-शोषण

"श्रेणिक सुनो आध्यात्मिक गूढ़ यह है,
जो पूर्णतम है सम्यक्त्व धारी ।
केवल वही पुण्यशाली सुजन ही,
नृप ! धर सके मालिका यह सुप्यारी ।
जो इन्द्र, धरणेन्द्र, गन्धर्व, चक्रादि
नाना तरह के तुमने बनाये ।
वे स्वप्न में भी कभी भूल राजन्,
यह दिव्य माला नहीं धर पाये ।"

माला रोहण

ॐकार वेदति शुद्धात्म तत्वं,
प्रणमामि नित्य तत्वार्थ सार्थं।
ज्ञानं मय सम्यग्दर्शनोत्थं,
सम्यक्चरण चैतन्यरूप।

[पद]

ओङ्कार रूपी चेतात्म ही है,
स्वरूप निर्मल शुद्धात्मा का।
ओङ्कार रत्नत्रय की मंजूषा,
ओङ्कार ही द्वार परमात्मा का।
ओङ्कार ही सार तत्वार्थ का है,
ओङ्कार चैतन्य प्रतिमाभिराम।
ओङ्कार में विश्व, ओङ्कार जग में,
ओङ्कार को नित्य मेरा प्रणाम।

नमामि भक्त श्रीवीरनाथं,
न त चतुष्टं व्यक्त रूपं।
मालागुणं वोच्छं तत्वप्रबोधं,
नमाम्यहं केवलि नंत सिद्ध।

[दो]

अनन्त चतुष्टय के निकेतन,
निकट न जिन अष्ट कर्मादि बसते।
ऐसे जिनवर श्री वीर प्रभु को,
मेरा युगल पाणि से हो नमस्ते।
मैं केवली, सिद्ध, परमेष्ठियों को,
भी भक्ति से आज मस्तक नवाता।
जो सप्त तत्वों की है प्रकाशक,
इस मालिका के गुण आज गाता।

कायाप्रमाणं स्व ब्रह्मरूपं,
निरंजनं चेतनलक्षणत्वं ।
भावे अनन्तं जे ज्ञानरूपं,
ते शुद्ध दृष्टी सम्यक्त्व बीर्यं ।

[तीन]

इस ब्रह्मरूपी निज आत्मा का
काया बराबर स्वच्छंद तन है ।
मल से विनिर्मुक्त, है यह घनानंद,
चैतन्य-संयुक्त बारंबार है ।
जो इस निरंजन शुद्धात्मा के,
शोधादि बनकर बनते पुजारी ।
वे ही सम्यक् हैं, निज आत्मरत में,

ससार दुक्ख जे नर विरक्त,
ते समय शुद्ध जिन उक्त दृष्टं।
मिथ्यात्व मद मोह रागादि खंडं
ते शुद्ध दृष्टी तत्वार्थ साधं।

[चार]

श्री जैन वाणी मं मुख कमल से,
कहते गिरा सिद्ध परमात्मा हैं।
संसार दुखों से जो परे हैं,
भव्यो वही जीव शुद्धात्मा हैं।
मिथ्यात्व,मद मोह रागादिकों से
निनन किये हैं रिपु नाश सारी।
वे ही सुजन हैं तत्वार्थ ज्ञाता,
वे ही पुरुष हैं सम्यक्त्वधारी।

शुन्य त्रिप चित्त निरोध नेत्व,
निन उक्त वाणी हृदि चेतनेत्वं।
मिथ्यादि देव गुरु धर्मदूरं,
शुद्ध स्वरूपं हतनार्थ आर्धे।

[पांच]

जो वीर प्रभु के [illegible] का
जिनके [illegible] किया है।
मि[illegible] [illegible] जिनने
[illegible] किया है।
मिथ्या[illegible] गुरु [illegible] से जो,
रहते [illegible] आत्म [illegible]।
वे ही [illegible] हैं [illegible]

जे मुक्ति सुक्खं नर कोपि सार्धं,
सम्यक्त्व शुद्धं ते नर धरेत्वं ।
रागादयो पुन्य पापाय दूरं,
ममात्मा स्वभावं ध्रुव शुद्ध दृष्टं ।

[८८]

मैं सिद्ध हूं, मुक्तिरमणी पियारा,
है मोक्ष मेरी यही चारु काया ।
मद मोह गला दुख रागादिका की
पड़ती न मुझ पर कभी भूल छाया ।
सम्यक्त्व से पूर्ण जिनके हृदय हैं,
जो चाहते मोक्ष किस रोज पावें ।
वे स्वावलम्बी इसी भांति अपने,
हृदयस्थ परमात्मा को रिझावें ।

श्री केवलज्ञान विलोकतत्वं,
शुद्ध प्रकाशं शुद्धात्म तत्वं।
सम्यक्त्व ज्ञानं चर नन्त वीर्यं,
तत्वार्थं सार्धं त्वं दर्शनेत्वं।

[भाव]

ज्ञानारसी मैं जिन दस का है।
दिव्य सत्व है श्रीजिनेन्द्र प्यारा।
जिसके घट में निरन्तर बिचरता-
रहता शुद्ध शुचि,शुद्ध प्यारा।
सम्यक्त्व की पूर्ण प्रतिमूर्ति है जो,
है सो अनुपम आनन्द-राशी।
तत्त्वार्थ के सार उस आतमा को,
देखो, विलोको, मोक्षाभिलाषी!

सम्यक्त्व शुद्ध हृदयं ममस्तु,
सत्य गुणमाला गुथतम्य वीर्यं।
दयाविदेव गुरु ग्रन्थ मुक्त,
धर्मं अहिंसा क्षमा समर्थ्यं।

[आठ]

सम्यक्त्व की पावन पत्रावली से,
सरस पुष्प हार हैं जगमाते।
पुण्यात्मा, तीर्थंकर वीर ही पर,
उसके गुणों को कर व्यक्त पाते।
निरंजन ही देव हैं ज्ञानियों के,
गुरु ग्रन्थ-निर्मुक्त, कल्याणकारी।
है धर्म परमोच्च उत्तम अहिंसा
जिसमें निहित भी क्षमा शक्तिधारी।

तत्त्वार्थ सार्थं स्व दर्शनत्वं,
मल विमुक्त सम्यक्त्व शुद्ध ।
ज्ञान गुण चरणस्य शुद्धस्य वीर्यं,
नमामि नित्यं शुद्धात्म तत्त्व ।

[नौ]

तत्त्वार्थ के सार को तुम निरखो,
जो शुद्ध सम्यक्त्व का मधु प्याला ।
परिपूर्ण जो शुद्धतम ज्ञान से है,
जो है अतुल शक्ति चारित्र वाला ।
यह सार प्यारा शुद्धात्मा है,
चिर सुखसदन का अनुपम सु साधन ।
ऐसे अमोलक विज्ञानघन को,
मैं नित्य करता सद्भावाभिवादन ।

जे सप्त तत्त्व षट दर्व युक्त,
पदार्थ काया गुण चेतनेत्व।
नित्य प्रमाय तत्त्वान वेद,
श्रुत देव देव शुद्धात्म तत्त्व।

[दश]

जो सप्त तत्त्वों को व्यक्त करता,
षट द्रव्य जिसको हस्तामलक हैं।
पंचास्तिकाया औ' नौ पदारथ,
जिसमें निरंतर रहते झलक हैं।
चैतन्यता से है जो विभूषित,
त्रिभुवन-जनों को जो जगमगाता।
श्रुत-ज्ञान रूपी उस आत्म ने ही,
रत रह, करो आत्म-कल्याण भ्राता!

दर्व गुरु शास्त्र गुणान नेत्रं,
सिद्ध गुण सोलाकारणेन्द्र ।
धर्म गुण दर्शन ज्ञान चरण,
पालाप गुयरा गुणसारस्वरूप ।

[ग्यारह]

मत भेद रह [illegible] है
श्रद्धा करो नित [illegible] ।
दुखिया मित्रों [illegible]
या ने परम [illegible] ॥
शुचि, शुद्ध [illegible] से
अपना [illegible] प्रकटाओ,
शिव पंथ जिससे हो स्पष्टतर
उसके लिए, सब [illegible] ।

पदमाय ध्याता तत्वान ध्येय,
प्रधान शील तप दान चित्तं।
सम्यक्त्व शुद्ध ज्ञानं चरित्रं,
सुदर्शन शुद्ध मल विमुक्त ।

[बारह]

एकादश स्थान में आचरण कर,
कर्मारि पर जय करो प्राप्त भारी।
पंचाणुव्रत पाल भव भव सुधारो,
उपशम हो तप तपो तापहारी।
दो दान सत्पात्र-दल को चतुर्भांति,
निज आत्म की ज्योति को जगमगाओ
पावन करो शील-सुर सरि से गेह,
सम्यक्त्व निधि प्राप्त कर मोक्ष पाओ

मूल गुणं पालत जीव शुद्ध,
शुद्ध मय निर्मल धारयेत्त।
ज्ञानं मय शुद्ध धरत चित्त,
ते शुद्ध दृष्टी शुद्धात्मतत्त्वं।

[तेरह]

वसु मूलगुण को पालन किये से,
रे! जीव होता है शुद्ध, सुन्दर।
पुरुषार्थियों को इससे उचित है,
धारण करें वे यह व्रत-पुरन्दर।
जो ज्ञानसागर इस आचरण से,
यह देव-दुर्लभ जीवन सजाते।
वे वीर नर ही हैं शुद्ध दृष्टी,
शुद्धात्म के तत्व वे ही कहाते।

शङ्काद्य दोष मद मान मुक्त,
मूढ़ त्रिय मिथ्या माया न दृष्ट।
अनाय पट्कर्म मल पचवीस,
त्यक्तस्य ज्ञानी मल कर्ममुक्त।

[चौदह]

शंकादि वसु दोष, मानादि मद को,
जिसने हृदय में स्थान धरा नहीं है।
त्रय मूढ़ता, षट् अनायतन की,
जिस पर न पड़ती छाया कभी है।
उपरोक्त पच्चीस मल वैरियों पर,
जिसने विजय प्राप्त की भव्य भारी।
वह कर्म के पाश से छूटता है,
बनता वही मुक्ति-रमणी-विहारी।

शुद्ध प्रकाश शुद्धात्मानं,
समस्त सपत्न विमुक्त।
रत्नत्रयालंकृत सम्यक्,
तत्त्वार्थसार्धं मभुमभिवृत्तं।

[पंद्रह]

शुद्धात्मा-[illegible] मय जीवो,
है शुद्ध, [illegible] निरंजन प्रकाश।
संकल्प [illegible] से होम उसमें,
करता [illegible] है निवास।
शुद्धात्मा [illegible] शुद्ध स्वरूप,
है रत्नत्र[illegible] गुणधारी।
तत्वार्थ [illegible] पथ यही,
भव्यो [illegible] है सुख

जे धर्म लीना गुण चेतनेत्वं,
ते दुःख हीना जिनशुद्धदृष्टी।
संप्रोय तत्वं सोऊ ज्ञान रूपं,
व्रजंति मोक्षं क्षणमेक एकं।

[सोलह]

शुद्धात्मा के चैतन्य गुण में,
जो नर निरंतर तन्मय रहते।
वे निश्च ही हैं, जिन शुद्ध दृष्टी,
संसार दुःख धार में वे न बहते।
जीवादि तत्वों का ज्ञान करके,
होते स्वरूपस्थ वे आत्म ध्यानी।
कर्मारि दल का विध्वंस करके
वरते वही वे शिवश्री भवानी

जे शुद्ध दृष्टी सम्यक्त्व शुद्धं,
माला गुणं कंठ हृदय अरुलित ।
तत्त्वार्थ सार्धं च करोति नित्यं,
संसार मुक्त शिव सौख्य दीयं ।

[सत्रह]

जो शुद्ध दृष्टी शुद्धात्म-प्रेमी,
नित पालते हैं सम्यक्त्व पावन ।
अपने हृदयस्थल पर धारते हैं,
जो यह गुणों की माला सुहावन ।
वे भव्य जन ही पाते निरंतर,
तत्त्वार्थ के सार का चारु प्याला ।
संसार-सागर से पार होकर,
पाते वही जीव चिर सौख्य-शाला ।

ज्ञान गुण माल सुनिर्मलैत्व,
सन्नेप गुथित तुव गुण अनन्त ।
रत्नत्रियालकृत सत्स्वरूप,
तत्वार्थ सार्थ कथित जिनेन्द्र ।

[अठारह]

शुद्धात्मा की गुणमालिका मैं
वाणी अगोचर है पुष्प भाई
संक्षेप मे ही पर पुष्प चुन चुन
यह दिव्य माला मैंने बनाई
आगम, पुराणों से तुम सुनोगे
बस एक ही वाक्य परमात्मा का
रत्नत्रयाच्छन्न है भव्य जीवों
शशि सा सुलक्षण शुद्धात्मा का

श्रेनीय पृच्छति श्री वीरनाथ,
मालाथिय मागव नेहचक्र ।
धरणेन्द्र इन्द्र गन्धर्व जक्ष,
नरनाह चक्र विद्या धरेश ।

[उन्नीस]

श्री वीर प्रभु से श्रेणिक नृपति ने,
पूछा सभा में मस्तक नवाकर ।
इस मालिका को त्रिभुवन तलीपर,
किसने निहारा कहो तो गुणागर ?
क्या इन्द्र, धरणेन्द्र, गन्धर्व ने भी,
देखी कभी नाथ यह दिव्यमाला ?
या यक्ष, चक्रेश, विद्याधरों ने,
पाया कभी नाथ यह मुक्ति प्याला ?

किं दिस रयन बहुवे अनन्तं,
किं धन अनतं बहुमेय युक्त ।
किं स्यक्त राज्यं मननासलेल्च,
किं तत्व वेल्वं बहुये अनतं ।

[बीस]

जिसके भवन में हीरे जवाहिर,
या द्रव्य की लग रही राशि भारी।
ऐसे कुबेरों ने भी प्रभो क्या
देखी कभी माल यह सौख्यकारी।
या राज्य को त्याग जोगी बने जो,
उनने विलोकी यह माल स्वामी,
या सप्त तत्वों के पंडितों ने,
देखी गुणावलि यह मोक्षगामी ?

श्री वीरनाथ उक्तं च शुद्ध,
शृणु श्रेणिक राजा माला गुणार्थं ।
किं रत्न किं स्वर्ण किं राजनाथं,
किं तस्य येन नहि माला दृष्ट ।

[इक्कीस]

बोले जिनेश्वर श्री मुख कमल से,
'श्रेणिक सुनो मालिका की कहानी।
इस नाम-गुण की सुमनावली के,
दर्शन सहज में नहीं प्राप्त प्राणी।
ना तो कभी रत्नधर धारियों ने,
श्रेणिक सुनो मालिका यह निहारी।
ना मालिका को रचते त्रिलोका,
जो मात्र थे रत्न के धानधारी ।"

किं रत्न कार्यं बहुनिद्धि अनंत,
किं अर्थं अर्थं नहि कोपि कार्यं।
किं राज चक्र किं काम रूप,
किं तत्व चेत्यं बिन शुद्ध दृष्टि।

[बाईस]

"इस माला के दर्शनों में न तो भूप,
रत्नादि पत्थर ही काम आवें।
ना सार्वभौमों के राज्य या धन,
हों इस गुणावलि को देख पावें।
ना तो इसे देव वत्स पाये,
ना कामदेवों से दृग-सुधारी।
दर्शन वही कर सकें मालिका का,
वे जो गुणी शुद्धतम दृष्टि धारी।"

जो इन्द्र धरणेन्द्र गंधर्व यक्ष,
नाना प्रकार बहुविह अनंत ।
तेऽनंत प्रकार बहु भेय कूटर्व,
माला न दृष्ट कथित जिनेन्द्रै ।

[तेईस]

"श्रेणिक! सुनो वास्तविक गूढ़ यह है,
जो पूर्णतम है सम्यक्त्व धारी ।
केवल वही ,पुण्यशाली सुजन ही,
नृप! धर सके मालिका यह सुसारी ।
जो इन्द्र, धरणेन्द्र, गंधर्व, यक्षादि,
नाना तरह के तुमने बताये ।
वे स्वप्न में भी कभी भूल राजन् !
यह दिव्य माला नहीं देख पाये ।"

जे शुद्ध दृष्टी सम्यक्त्व युक्त,
जिन उक्त सत्य सु तत्त्वार्थ साधैं।
आशा भय लोभ स्नेह त्यक्त,
ते सार रूप हृदय कंठ करैं।

[चौबीस]

जो स्याद्वादी सम्यक्त्व सम्पन्न,
शुचि,शुद्धदृष्टी,निज आत्मध्यानी।
तत्त्वार्थ ये सार को जानते नित्य,
ध्यावे पवित्र सच्ची जैन वाणी।
आशा भय स्नेह औ लोभ से जो,
बिलकुल अछूते हैं आत्मधारी।
वे ही हृदय कंठ में जिन पहिनते,
है आत्म-गुणमाल यह सौख्यकारी।

सम्यक्त शुद्ध मिथ्या विरत्,
लाज भय गारव सैनि त्यक्त ।
ते माल दृष्ट हृदय कंठ रुलित,
मुक्तस्य गामी जिनदेव कथित ।

[छत्तीस]

"मिथ्यात्व को सर्वथा त्याग कर
पार हो चुके हैं सम्यक्त्व धारी
जिनके हृदय लाज, भय से रहित
जिनने किये नष्ट मद अष्ट भारी
उनकी हृदय सेज ही भव्य जीवो
इस मालिका की क्रीड़ास्थली है
जिनदेव कहते उनके रमण को
ही यम मुक्ती शिवनगर की गली है।

ज दर्शन ज्ञान चारित्र शुद्ध,
मिथ्यात्व रागादि असत्य त्यक्तं।
त माल दृष्ट हृत्यकंठ ललित,
सम्यक्त्व शुद्ध कर्म विमुक्त।

[मनाईम]

शुचि, शुद्ध दर्शन, ज्ञानाचरण से,
जिनके हृदय में मची है दिवाली।
मिथ्यात्व, मद, मूढ रागादि के हेतु,
जिनके न उर में कहीं ठौर खाली।
जिनके हृदय कंठ पर ही निरंतर,
ये माल मनहर लटकती रहा है।
वे ही सुजन हैं जिन शुद्ध दृष्टी,
रिपु कर्म से मुक्ति पाते यही हैं।

पद्स्थ पिण्डस्थ रूपस्थ चित्त,
रूपा अतीत जे ध्यान युक्त ।
आर्त रौद्र मद मान त्यक्त,
ते माल दए हृदय कठ कलित ।

[अट्ठाईम]

पादस्थ,पिण्डस्थ ,रूपस्थ, निमूर्त,
इन ध्यान-कुञ्जों के जो विहारी ।
मद मान से शत्रुओं के गढ़ों पर,
जिनने विजय प्राप्त की भव्य भारी।
जिनके न तो रौद्र ही पास आता,
जिनको न ध्यानार्त की गंध आती ।
ऐसे सुजन पुङ्गवों के हृदय ही,
यह आत्मगुण मालिका है सजाती

शाश्रा सुवेद उपशम धरेत्व,
क्षायिकं शुद्ध जिन उक्त साधं।
मिथ्या त्रिभेद मल राग खंडं,
वे भाल दृष्ट हृदय रूढ ललितं।

[उनतीस]

जो श्रेष्ठतम नर [illegible] व बनराम,
सम्यक्त्व के हैं [illegible] शुद्ध धारी ।
मिथ्यात्व से [illegible] है [illegible] जिनको,
सम्यक्त्व [illegible] रत्न भारी ।
मद राग से [illegible] सर्वथा हैं,
जो जानते, [illegible] रत्न पावन ।
वे ही हृदय [illegible] पर रखते हैं
नित रावत, [illegible] पद सुहावन।

जे चेतना लक्षणो चेतनेत्वं,
अचेत विनाशी असत्य च त्यक्तं।
जिन उक्त सत्य सु तत्वं प्रकाशं,
ते माल दृष्ट हृदय कंठ रुलितं।

[तीस]

चैतन्य—लक्षण—मय आत्मा के,
हैं जो निराकुल, निश्चल पुजारी।
पुद्गल, अचेतन, विनाशीक, पर में,
जिनको नहीं रंच ममता दुलारी।
जिनके हृदय में जिन उक्त तत्वों,
की नित्य उदासी संतत ज्वाला।
उनके हृदय-कंठ की ही जगाती,
श्रेणिक सुनो! यह अध्यात्म-माला।

शुद्ध बुद्धस्य गुण सत्य रूप,
गादि दोष मल पुंज त्यक्त।
में प्रकाश मुक्ति प्रवेश,
माल दृष्ट हृदय कंठ कलित।

[इकतीस]

जिन शुद्ध जीवों को दिख चुकी है,
निज आत्मश्री माधुरी मूर्ति बाकी।
जिनके दृगों के निकट झूलती है,
प्रतिपल सुमुक्तिमुक्ति की दिव्य झाँकी
जो रागद्वेषादि मल से परे हैं,
जो धर्म की कान्ति को जगमगाते।
इस मालिका को वही शुद्ध दृष्टि,
अपने हृदय पर कभी देख पाते।

जे सिद्ध न तें मुक्ति प्रवेश,
शुद्ध स्वरूप गुण मान प्रकाश ।
जे कवि मध्यात्म सम्यक्त्व शुद्ध,
ते बात मोचं करिसे जिनेन्द्र ।

[पचीस]

अब तक गये विश्व से जीव जितने,
चोला पहिन मुक्ति का सिद्ध शाला ।
अपने हृदय पर सजा ले गये हैं,
वे सब [illegible] ।

तृतीय धारा



कमल-कतरिरि

आत्म तत्व ही इस त्रिभुवन में,
सच्चा रत्नत्रय है ।
सब देवों का देव यही,
परमेश्वर एक अजय है ।
आत्म तत्व ही सब गुरुओं का,
श्रेष्ठ परम गुरु ज्ञानी ।
सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म बस,
आत्म तत्व सुखदानी ।

तत्त्वं च परम तत्त्वं परमप्पा,
परम भाव दरसीए ।
परम जिन परमिस्टी,
नमामिह परम देवदेवस्य ।

[एक]

तत्वों में जो तत्व परम हैं,
भाव परम दरसावे ।
परम जितेन्द्रिय परमेष्टी जो,
परमेश्वर कहलावे ।
सब देवों में देव परम जो,
वीतराग, सुख-साधन ।
ऐसे श्री अरहन्त प्रभू को,

जिन वयनं सद्दहनं,
कमलगिरि कमल नाल उपलन्न ।
आर्जेन भाव संजुत्तं,
ईर्जे स्वभाव मुक्ति गमन च ।

[दो]

पतितोद्धारक जिनवाणी के
होते जो श्रद्धानी ।
आत्म-कमल से प्रगटें, उनके,
हो भव—भाव—भवानी ।
आत्म बोध का हो जाना ही,
आकुलता जाना है ।
आकुलता का जाना ही बस,
शिव सुख को पाना है ।

अन्मोयं न्यान सहार्य,
रयन रयन स्वरूपममलन्यानस्य।
ममलं ममल सहार्य,
न्यानं अन्मोय सिद्धि संपत्ति ।

[तीन]

ज्ञान-स्वभाव है, स्वत्व सनातन,
आतम तत्व का प्यारा ।
रत्नत्रय से है प्रदीप्त यह,
रत्न प्रवरतम न्यारा ।
कर्मों से निर्मुक्त, सदा यह,
शुचि स्वभाव का धारी ।
जो उसमें नित रत रहते वे,
पाते शिव सुखकारी ।

जि न य ति मिथ्या भाव,
अनृत असत्य पर्जाव गलिय च।
गलिय कुन्यान सुभाव,
विलय कम्मान तिविह जोएन।

[चार]

आत्म मनन से मिथ्यादर्शन,
ईधन सा जल जाता।
अनृत, अचेतन, असत् पदों में,
मोह न फिर रह पाता।
'सोऽहं' की ध्वनि क्षय कर देती
कुज्ञानों की टोली।
आत्म चिन्तवन रचदेता है,
अष्ट मलों की होली।

नन्द आनन्द रून,
चेयन आनन्द पर्जोर गलिय च।
न्यानेन न्यान अन्मोय,
अन्मोय न्यान कस्म पिपन च।

[पाँच]

परम ब्रह्म में जब रत होता,
मन—मधुकर—मतवाला ।
सत् चित्, आनंद से भर उठता,
तब अन्तर का प्याला ।
ज्ञानी चेतन, ज्ञान-कुण्ड में,
खाता फिर फिर गोते ।
मलिन भाव और सबल कर्म तब
पल पल में क्षय होते ।

धाम्म महावं पिपनं,
उत्पन्न पिपिय दिट्ठि सद्भावं।
चेयन रून सजुत्तं,
गलियं रिलयंति धम्म यथान।

[छन्द]

धर्मा का नश्वर स्वभाव है,
पत्र वे गिर जाते हैं।
क्षायिक-सम्यग्दर्शन-सा धन,
रत्न मनुज पाते हैं।
क्षायिक सम्यग्दृष्टी नित प्रति,
आत्म—ध्यान धरता है।
जन्म जन्म के कर्मों को वह,
क्षण में क्षय करता है।

मन सुभाव संपिपनं,
ससारे सरनि भाव पिपन च।
ध्यान बलेन विसुद्ध,
अम्मोयं ममल मुक्ति गमनं च।

[सात]

इस चपल मन का स्वभाव है
नाशवान प्रिय भाई।
नश्वर है मिथ्यादर्शन भी,
भी प्रकृति दुःखदाई।
आत्म ज्ञान ही सरल शुद्ध,
भावों को उपजाता है।
सरल शुद्ध भावों के बल से,
हो नर शिव पाता है।

वैराग्यं तितिक्षि उत्तम,
जनरंजन रागभाव गलिय च।
कलरंजन दोष विमुक्त,
मनरंजन गारवेन विक्त च।

[आठ]

भव, तन, भोगों से निस्पृह मन
आता आत्म—पुजारी।
जन-रंजन गारव न उसे
रह, देता, दुख दुखकारी।
कल—रंजन के भय से वह,
छुटकारा पा जाता है।
मन—रंजन गारव भी उसके,
पास न फिर आता है।

दर्सन मोहम विमुक्त,
राग दोषं च वियन गलिय च।
ममल सुभाउ उवम,
नन्त चतुस्टये दिस्टि संदर्स।

[नौ]

दर्शन-मोह से हो जाता है,
मुक्त आत्म का ध्यानी।
रागद्वेष से उसकी ममता,
हट जाती दुखदानी।
घट में उसके आत्म-भाव का,
हो जाता उजियाला।
अनंत चतुष्टय की जिसमें नित,
जगती [illegible]

तिअर्थं सुद्ध दिष्ट,
पंचार्थं पंच न्यान परमेस्टी ।
पंचाचार सुचरन,
सम्मत्तं सुद्ध न्यान आचारनं ।

[दस]

सम्यग्दृष्टी नितप्रति निर्मल,
रत्नत्रय को ध्याता ।
पंच ज्ञान, पंचार्थ, पंच प्रभु,
का होता वह ज्ञाता ।
पंचाचारों का नितप्रति ही,
वह पालन करता है ।
सब मिथ्या व्यवहार त्याग वह
आत्म-ध्यान धरता है ।

दर्सन न्यान सुचरन,
दर्व च परम देव सुद्ध च।
गुरुं च परम गुरुन,
धर्म च परम धर्म सभाव ।

[ग्यारह]

आत्म तत्व ही इस त्रिभुवन में,
सचा रत्नत्रय है ।
सब देवों का देव यही,
परमेश्वर एक अजय है ।
आत्म तत्व ही सब गुरुओं में,
श्रेष्ठ परम गुरु ज्ञानी ।
सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म बस,
आत्म तत्व सुखदानी ।

जिन पद परम विनय,
ध्यान पंचामि अक्षर जोय ।
ध्यानेन ध्याय सिधं,
समत्व सुभावेन सिद्धि सम्पत ।

[बारह]

आत्म ध्यान ही सम्यक्त्वी का,
परमेष्ठी पद प्यारा ।
आत्म ध्यान ही उसका केवल-
ज्ञान अलौकिक न्यारा ।
आत्म तत्त्व के अनुभव से ही,
आत्म ज्ञान बढ़ता है ।
आत्म ज्ञान के बल पर ही नर,
शिव पथ पर चढ़ता है ।

चिदानन्द चितवन,
...घन आनन्द सहज आनन्द।
...उज्ज्वल पयहि पिवन,
...मल महावेन अन्मोय मजुत।

[तेरह]

सत चित् आनन्द चेतन में तुम,
रमण करो प्रिय भाई।
इससे तुमको होगा अनुभव,
एक अकथ सुखदाई।
मुरझा जाती है पापों की,
आत्म मनन से माला।
कर्म प्रकृतियों की हो जाती,
हिम-सी ठण्डी ज्वाला।

अप्पा पर पिच्छतो,
पर पर्जाय सत्थ मुक्क च।
न्याय सहाव सुद्ध,
सुद्ध चरनस्थ अन्मोय सजुत्त।

[चौदह]

'आत्म द्रव्य का पर स्वभाव है,
पर द्रव्यों का पर है।'
इस मन में बहता जब ऐसा,
ज्ञान-मयी निर्झर है।
पर परणतियें, शल्यें तब सब
सहसा ढह जाती हैं।
निज स्वरूप की ही तब फिर फिर,
झांकी दिखलाती हैं।

अनम्भ न चनन्त,
विकहा विनस्य विषय मुक्त च।
न्यान सुहाव सु समय,
समय सहकार ममल अनमोय।

[पंद्रह]

परमब्रह्म में जब चचल मन
निश्चल हो रम जाता।
तब न वहा पर अन्य, किन्तु,
निज आतम स्वरूप दिखाता।
चारों विकथा, व्यसन, विषय
सब क्षण छुप से जाते हैं।
परमब्रह्म में रत मन होगा,
मल सब धुल जाते हैं।

निन वयन च सहाव,
निलय मिथ्यात कषाय कम्मानं।
अ प्पा सु द्ध प्पा न,
परमप्पा ममल दर्सए सुद्ध ।

[सोलह]

निज गुण सरसीरुह की है यह,
ऐसी प्रिय जिनवाणी ।
मल, मिथ्यात्व, कषायें सबको,
पल में हरती ज्ञानी ।
आत्म तत्व ही शुद्ध तत्व है,
जिन प्रभु कहते भाई ।
आत्म-मुकुर में हो बस तुमको,
देंगे प्रभु दिखलाई ।

निन दिट्टि इट्टि सहुद्ध,
इट्टं मंनोय निगत अनिट्ट ।
इस्ट च इस्ट रुन,
ममत्त महावेन ऽम्म संपिपन्नं ।

[सग्रह]

१

जिनवाणी की श्रद्धा हिय में,
शुचि पावनता लाती ।
विरह अनिष्टों से, इष्टों से,
वह संयोग कराती ।
त्रिभुवन में सबसे मृदुतम यह
आत्म-मनन की प्याली ।
ध्यान-सुधा से ही टूटेगी,
कर्म-कमठ की जाली ।

अन्यान नहि दिट्ठ,
न्यान महावेन अन्मोय ममलच।
न्यानतर न दिट्ठं,
पर पर्जाव दिट्ठि अतर महमा।

[अठारह]

क्षायिक सम्यग्दृष्टी में अ
नहीं रहता है
ज्ञान-तरंगों पर चढ़, नित
शिव-सुख में बहता है
आत्म ज्ञान म अंतर उ
नेक नहीं दिखत
भेद भाव, पर परणतियों
पर सहसा आ जा

अप्पा अप्प सहावं,
अप्प सुद्धप्प ममल परमप्पो ।
परम सरूव रूवं,
रुव विगत च ममल न्यान च ।

[उन्नीस]

आत्म द्रव्य ही है परमोत्तम,
शुद्ध स्वरूप हमारा ।
वह ही है शुद्धात्म यही है,
परमब्रह्म प्रभु प्यारा ।
त्रिभुवन में चेतन-सा उत्तम,
रूप न और कहीं है ।
है यह ज्ञानाकार, अन्यतम
इसका रूप नहीं है ।

ममल ममल शास्व,
न्यान निन्यान न्यान गहदारं ।
जिन उत्तं जिन वयन,
जिन गहकारेन मुक्ति गमनं च ।

[वीर]

जिनके अमृत-वचन मोह से,
मृदु फल के दायक हैं ।
हस्तामलकवत् जो त्रिभुवन के,
घट घट के ज्ञायक हैं ।
ऐसे जिन प्रभु की यह कहती,
चेतन अधिकारी है ।
आत्म-ज्ञान ही पंच ज्ञान के,
पथ में सहकारी है ।

एकांत विप्रिय न दिठ्ठ,
मध्यस्थ ममल सुद्ध सन्मान।
सुद्ध सहार्न उत्त,
ममल दिठ्ठि च जम्म पिपन च।

न क्लिष्ट जीना,
न्मोय सहकार दुग्गए गमन।
। निरोह सभानं,
मारे सरनि दुपनीयम्मि ।

[तेईस]

जो नर संसारी जीवों का,
पीड़ा पहुचाते हैं ।
या पर से दुख पहुँचा उनको,
जो अति सुख पाते हैं ।
ऐसे दुष्टों का होता बस,
नर्क-स्थल में डेरा ।

न्यान सहाव सु समर्थ,
अन्मोय ममल न्यान सहकार ।
न्यान न्यान सहर्थ,
ममल अन्मोय सिद्धि सम्पर्न ।

इट्ठं च परम इट्ठ,
इट्ठ अमोघ विगत अनिट्ठ ।
पर पज्जाय विलय,
न्यान सहावेन कम्मजिनिय च ।

[पद्यीग]

त्रिभुवन में सर्वोत्कृष्ट बस,
इस चेतन का पद है ।
निज स्वरूप में रमना ही बस,
अहित विगत सुख-पद है ।
आतम मात्र स्वभावों का घर,
देवी रूप ध्येय है ।
इसके कर्मज भी पर्यायें,
पास नहीं आतीं हैं ।

जिन वयन सुद्द सुद,
अन्मोय ममल सुद सहकार ।
ममल ममल सरूवं,
ज रयन रयन सरूव समिलिय ।

[छब्बीस]

यो जिनवाणी निश्चयनय का,
प्रिय सन्देश सुनावो ।
त्रिभुवनतल मे इससी पावन,
वस्तु न और लखावो ।
ज्ञान सिन्धु आतम का भव्यो !
रूप परम पावन है ।
आत्म मनन से ही मिलता वस,
रत्नत्रय सा धन है ।

...ेह च गुन उववन्न,
...ेह सहकार कम्म सपिपन।
...ेह च इह कमल,
...मलसिरि कमल माव उववन्न।

[सत्ताईस]

जगता है शुद्धोपयोग गुण,
आत्म – मनन से भाई।
जिसके फल से गल जाते सब,
कर्म महा दुखदाई।
कर्म घाट, अरहन्त महापद
आत्म—कमल पाता है।
और वही निज-रूप रमण फिर,
शिवपुर दिखलाता है।

जिन वयन सहराय,
मिथ्या कुज्ञान सल्ल तिक्क य।
विगत विषय कषाय,
ध्यान अम्मीय कम्म गलिय य।

[अनुवाद]

भव-सागर अति दुर्गम, दुख ,
थाह न इसकी पाती।
इसको तरने म समर्थ सब,
एक महा जिन—वाणी।
जिन—वाणी कुज्ञान, कषायें,
शल्य, विषय क्षय करती।
निश्चयनय का गीत सुना यह,
सब कर्मों को हरती।

मल कमल सुहावें,
हृत्कमल विकसें ममत्व आनन्द।
र्शन ज्ञान सरूप,
ल अनमोल रत्न मणिधर।

[उन्नीस]

आत्म-कमल अद्भुत रूप में,
जिस क्षण मुसकाता है।
उस क्षण ही, पट गुण किरण दल
उसको विकसाता है।
दर्शन-ज्ञान सरोवर में वर,
आतम, रमण करता है।
और अघातिय कर्म नाश, वह
शिव में पग धरता है।

ससार सरनि नहु दिट्ठ,
नहु दिट्ठ समल पर्जाय सभाव।
न्यान कमल सहाव,
न्यान विन्यान ममल अन्मोय।

[तीस]

सिद्ध न संसारी जीवों—से
भव भव गोते खायें।
अशुचि मलिन परिणतियें उनके,
पास न जाने पायें।
उनके उर में कमल सदृश बस,
केवल — ज्ञान विहँसता।
शुद्ध ज्ञान, सत् चित् सुख ही बस
उनके हिय में बसता।

निन उच्च सद्दहन,
अप्पा परमप्प सुद्ध ममल च।
प र म प्पा उ व ल द्ध,
धम्म सुभावेन कम्म निलयन्ती।

[इकतीस]

'विज्ञो ! अपना आत्म द्रव ही,
है जग का परमेश्वर।
बरसाते इस वाक्य-सुधा को,
तारण तरण जिनेश्वर।'
जो जन, जिन-वच पर श्रद्धा कर,
बनता आत्म—पुजारी।
कर्म काट, भवसागर तर वह,
बनता मोक्ष—विहारी।

जिन दिट्ठ उत्त सुद्धं,
जिनति तम्मान हिनिद जोएन।
न्यान अन्मोय ममल,
ममल सरून च मुक्ति गमन च।

[बत्तीस]

जैसा जिन ने देखा, वैसा
वचन—अमिय बरसाया।
वैसे ही शुद्धात्म तत्त्व का,
मैंने रूप दिखाया।
त्रिविधि योग से मनन करेंगे,
जो आगम—आराधन।
कर्म जीत, वे ज्ञानानन्द हो,
पायेंगे शिव—पावन।

प्रार्थना-"आत्मराम"

तिमराम जय आतमराम, अमर अमर है आतमराम।
पतित पावन आतमराम ॥

ी प्रभुओ नें प्रेम से, आतमराम जय आतमराम। टेक

यह एक अनेकों नाम, मन मंदिर में है विश्राम।
ोई शिव ब्रह्म हे नाम, दूसरो कहते प्रभाभिराम ॥
म रूप का भेद भूल जा, मत मर्यादा आतमराम।
ार्मल शुद्ध बुद्धि से देखो, पा जाओगे आतमराम ॥१॥
बोलो०

ार मन है चारों धाम, इसमे शुचित आठों याम।
ह्म विष्णु है शंकर नाम, कोइ कहता राधेश्याम ॥
जगती के तन तन में देखो, व्याप रहा है आतमराम।
ो पानी पवन अग्नि में, भलक रहा है आतमराम ॥२॥
बोलो०

पानी में नहिं गलता राम, न आग में जलता राम।
नहीं वायु से उड़ता राम, नहीं भूख से मरता राम॥
ध्रुव है नित्य अटल दुनिया में, शाश्वत रहता आतमराम।
जय निर्गुण जय गुणसागर, अनघ अनामय आतमराम॥
बोलो० ॥३॥

इसमें सच्चा है आराम, खरच नहीं होता है दाम।
भज लो इसको प्रात शाम, जिससे हो जाये कल्याण॥
अपने को मैं ढूंढ निकालो, यत्न करो निशदिन निष्काम।
ध्यान लगाकर अनुभव करलो, पा जाओगे आतमराम॥४॥
बोलो०

महावीर की यह जिनवाणी, वेद बुद्ध ने इसे बखानी।
सब धर्मों ने निश्चय जानी, संतों ने इसको पहिचानी॥
अपने पर का भेद भूल जा, मिल जायेंगे आतमराम।
आशा भय स्नेह छोड़ दे, मुखर उठेंगे आतमराम॥५॥
बोलो०

मीरा की वह श्याम लगन में, द्रोपदि की वह चीर हरन में।
सीता की वह अग्नि तपन में, राजुल ने पाया गिरिवन में॥
मैनासुन्दरि ने पति सेवा में ही, पाया अपना आतमराम।
सेवा के पथ पर आ जाओ, बोल उठेंगे आतमराम॥६॥
बोलो०

कुंदकुंद ने आत्ममगन में, योगीन्दु देव की सत्य लगन में।
उमास्वामि की सत्य लगन में, तारण गुरु की श्रुतचिंतन में।।
स्याद्वाद की सत्य जगन में, जगधारा के उलट चलन में।
सत् श्रद्धा रूह ज्ञान चरण में, पाया अपना आतमराम ।।७।।

बोलो०

नग रेवता निर्जन वन में, बना हुआ है सुन्दर धाम।
संतों की यह तपोभूमि है, और निसई जी उसका नाम।।
तारण तरन गुरु ने जहां पर अंत समय कीना विश्राम।
ऐसे आत्मतत्त्व के ज्ञाता, गुरु को नित प्रति सदा प्रणाम।।
बोलो बंधुओ बड़े प्रेम से, आतमराम जय आतमराम ।।८।।

卐

रचयिता —

श्री बाबूलाल डेरिया

संपादक—तारण जैन पत्रिका

— प्रात कालीन —

* जिनवाणी-प्रार्थना *

जय कल्याणमय जिनवाणी। जय जय माँ! मंगलपाणी॥

स्याद्वाद नय के प्राङ्गण में
बहे तुम्हारी धारा,
परम अहिंसा मार्ग तुम्हारा
निर्मल, प्यारा, प्यारा!

मा! तुम इस युग की ज्ञानी! मत्र गुणखानी॥
जय (Choru)

अशरणशरणा प्रणतपालिका
माता नाम तुम्हारा।
कोटि कोटि पतितों के दल को
तुमने पार उतारा॥

क्या ज्ञानी क्या अज्ञानी? तिर्यग् प्राणी॥
जय (Chorus)

मोह-मान-मिथ्यात्व मेरु को
तुमने भस्म बनाया।
जिसने तुम्हें नयन भर देखा,
जीवन का फल पाया॥

तुम मुक्ति-नगर की रानी! शिव भवानी॥
जय (Chorus)

— संध्या कालीन —

* जिनवाणी-प्रार्थना *

आओ वन्दना करें श्री जिनवाणि की रे ।
श्री जिनवाणि मा रे - बुद्धिदानि की रे । —आओ

स्याद्वाद नय प्रधान
दया धर्म जिसका प्राण
विश्व-प्रेम की निधान
आओ हम ये संवारें, भव-भयानि का रे । —आओ

जन्म - मरण - सिन्धु-पोत
कुमति तिमिर को रवि ज्योति
अगम ज्ञान की जो स्रोत
अमृत धार बहे जहां केवलज्ञानि की रे । —आओ

कुन्दकुन्द से विशाल
तारण तरण से जल-यान
हुए जिसके सुत महान
आओ वंदना करें उसी गुणखानि का रे । —आओ

जननि हम हैं निरवलम्ब
पतित पावनी तू अम्ब ।
तार, मत लगा विलम्ब,
'चंचल' सुरत ना बिसार पतित प्राणि की रे । —आओ

— 'चंचल'

'सोऽहं' 'अहम्' और [illegible]
ध्वनि से, त्रिभुवन [illegible]
चौदह मन्त्र-रत्न [illegible]
भव-भय ताप हर [illegible]
गुरु दयाल [illegible]
मेरे हृदय [illegible]
तू चन्दा 'चंचल' [illegible]
तुम साहब हम [illegible]

— '[illegible]'

★

— [illegible] —

गुरु-[illegible]

भज मन ! [illegible]
जेहि सुमरे भव-[illegible]
[illegible]
अगुरु, अदेवों [illegible] आल।
[illegible]
[illegible] पाल ॥